"स्वाभिमान या अंह"

आत्मिक कल्याण के लिये जीव (रूह) के पास कुछ गुण होने आवश्यक हैं। एक श्रेष्ठ गुण है स्वाभिमान होना। पर जीव एकत्र किसे कर रहा है? विचारणीय प्रश्न है। "अहम" को! इसका नतीजा है अंधा हो करके अभाव में वरतना। मेरे पास ये-ये इत्यादि पदार्थ अथवा समर्था है। ऐसा अहं जीव की बुद्धि को कुंठित कर अंधा बना देता है। वो सोचता है मैं बहुत चतुर हूँ मेरे पास बहुत साधन इत्यादि हैं तथा प्रत्येक चमक को हीरा समझ

उसे प्राप्त करने के लिये हर तरह के तरीके प्रयोग में लाने लगता है तथा प्राप्ति को ही अपनी शान श्रृंगार बनाने में अपने इस कीमती जन्म को व्यर्थ के धंधों में खो कर खाली हाथ पल्ला झाड़ कर रोता-पीटता चला जाता है । ये सब विवेक के खोने से ही प्रत्यक्ष होता है । ये भूल जाता है कि जो कुछ मिला है तेरा अपना ही पीछे कमाया हुआ है । जिसे तूं अपनी "चतुराईयों का फल" समझ रहा है ये तेरा इयाणापन (अहं) है । इस अंधेपन में तेरी अपनी कमाई घटती जा रही है और आगे के जन्मों में तुझे कम से कम ये समस्त साधन जिन का तू दुरुपयोग कर रहा है आवश्यक रूप से कभी सुपने में भी "खून के आँसू" रोने के बावजूद प्राप्त होने सम्भव न हो सकेंगे ! ऐसी अधूरी अभाव तथा बेकदरी की जिन्दगी जीने के लिये तुझे मजबूर होना पड़ेगा जिसे केवल भुगतने वाली आत्मा ही अनुभव कर सकती है लफजों में ब्यान करना असंभव है ।

अहम दरअसल शैतानी ताकत का एक बहुत सशक्त फंदा है जो कमाई वाली आत्माओं की गर्दन बहुत आसानी से कस कर पकड़ लेता है । धीरे-2 ये फंदा सख्त होता जाता है, कब आखिरी घड़ी सिर पर आ खड़ी होती है जीव को पता भी नहीं लगने देता ! इस मुश्किल की घड़ी में सब एकत्र किये गये पदार्थ कुछ भी योगदान नहीं दे पाते उल्टा उन्हें स्थिर रखने की चिन्ता-

उन से बिछुड़ने का दुख आग में घी का काम करते हैं । जिस कमाई अथवा धन नें आगे इसका साथ देना था उसके अभाव में उसे बहुत दुख उठाना पड़ता है । "कूक पुकार को न सुणे-ओथे पकड़ ओह टोइआ ।" उसकी दुहाई अथवा रोने को कोई देखने-सुनने वाला नहीं होता । जिसने साथ देना था उसके लिये इस जीव के पास सारी उम्र कोई समय ही नहीं है (फालतू की चीज़ जो ठहरी!) अब याद आती है, करना भी चाहता है ! पर कर कुछ नहीं सकता । करने के लिये मिला कीमती मनुष्य जन्म -21,600 रोज के प्राण केवल काम (कामनाओं) में जलने के लिये झोंकता रहा । "राम नाम धन संग सखाई । अहनिस निरमल हर लिवलाई । राम नाम बिन कवन हमारा । सुख-दुख सम कर नाम न छोडउ आपे बखस मिलावणहारा ।"

इस शैतानी फंदे से बचने के लिये जीव को विवेक की आवश्यकता है जो केवल परमात्मा से ही मिलनी संभव है ! उसे प्राप्त करने के लिये जीव के पास रहत-मर्यादा अनुसार जीने का "नियम" होना आवश्यक आधार है । इसका एक अंश जीव का स्वाभिमानी होना है । दोनों (स्वाभिमान-अहम) साधारण तौर पर एक से लगते हैं । ये भ्रम भी शैतान का ही है । असल में हैं दोनों उल्टे फलदायक । अहम में जीव का पतन होता है तो स्वाभिमान में जीव का कल्याण ! अहम में जीव साधनों का दुरुपयोग कर

मर्यादा रहित जीवन जी कर अपने मनुष्य जन्म के अर्थ को ही खो देता है तो स्वाभिमान में जीव अपने को नियमों में रख कर मर्यादित-व्यवहारिक जीवन जीता हुआ सदा के लिये उसके अपने कमाये हुए दुखों से ऊपर उठ जाता है जो केवल उस एक परमात्मा की दया से ही संभव बनता है, उसकी दया का एक नमूना केवल विवेक बुद्धि ही है ।

(स्वंय भू+मान) एक ही सत्ता है जो केवल अपने आप से रोशन है "स्वंय भू" अर्थात प्रभू-परमेश्वर ! मान अर्थात आदर-सत्कार ! किसे देती है विचारणीय प्रश्न है ? एक आदर तो उसने अपने अंश प्रत्येक आत्मा को भरपूर दे रखा है । इस रूह में कभी भी किसी भी काल में कोई भी-किसी भी तरीके अथवा साधन से जमा-घटा नहीं कर सकता ! न पैदा कर सकता है न हजम ही करने में समर्थ हो सकता है ! यही कारण है कि शैतान अनन्त काल से इसे बन्दी तो बना बैठा है लेकिन इसका हनन आंशिक रूप से भी करने में असमर्थ है । उसके ये तीनों मुल्क रोशन रहें ये वासना उसमें बहुत प्रबल बनती रहती है । इस हवस की पूर्ति केवल आत्मा के इन मुल्कों में प्रत्यक्ष रहने से संभव होती है । आत्मा को यहाँ रोकने के लिये उसे कुछ उपाय प्रयोग में लाने पड़ते हैं । सब से सशक्त उपाय है रूप की सत्ता ! रूप के लिये उसे पदार्थ की आवश्यकता होती है जो उसे प्रभू से भरपूर मिलती

है अर्थात "प्रकृति" प्रकृति से रूप प्रत्यक्ष करने के लिये ताकत अथवा आधार चाहिये । वो क्या है ? वो है "शब्द" (आवाज जो रागमई है) इस शब्द से जो "प्रकाश" प्रत्यक्ष होता है केवल उसे ही परमार्थ में "नाम" कहते हैं । जो शैतान को प्रभू से भरपूर मिलता है । शब्द जब प्रकृति में प्रवेश करता है तो प्रकृति गर्भ धारण करती है और रूप को उगलती है जैसा शब्द से संकल्प किया जाता है । शब्द की अनुपस्थिति में रूप की कल्पना असंभव है कारण ? प्रकृति का सूक्ष्म रूप "शब्द" के सिवा और कुछ भी सुपने में भी नहीं है । लेकिन बाहरी स्वरूप केवल जड़ जैसा ही प्रत्यक्ष होता है । यही उस "एक" की कला का एक तुच्छ नमूना मात्र है । "खंड-पाताल दीप सभ लोहा । कालै वस आप प्रभ कीआ ।" रूप का आर्कषण तथा आधार केवल शब्द मात्र ही है । रूप किसी रूप को उगलने में असमर्थ है । लेकिन सत्ता इस प्रकार से कार्य करती है कि भ्रम होता है रूप-रूप को प्रत्यक्ष कर रहा है शब्द अति सूक्ष्म गुप्त तथा खामोश रहता है । उगले हुए रूप में एक नियम रहता है कि उसकी सत्ता कभी भी एक रस अर्थात स्थिर नही रहती । खामोशी से शब्द सिमटता रहता है प्रत्यक्ष होते ही । साधारण दृष्टि से उसका आभास नहीं होता केवल सूक्ष्म दिव्य दृष्टि सम्पन्न आत्मा ही उसकी दया से इस भेद को अनुभव कर पाती है । इसीलिये बाहर से स्थिरता का भ्रम बना रहता है पर

अन्दर से उसकी सत्ता निरन्तर मिटती चली जाती है । इसी का शैतान को भरपूर लाभ प्राप्त होता है । दूसरा लाभ जीव को रोकने तथा कैद रखने के लिये ये एक पिंजरे का कार्य करता है । धीरे-2 रूप के आकर्षण का दीवाना जीव इस के मोह अथवा सम्बन्धों की ममता में अपने असली स्वरूप को भूलता चला जाता है । उसे आज ये भी याद नहीं है कि उसकी सत्ता अविनाशी का अंश सदा एक रस रहने वाली अनन्त ब्रह्मांडों पर राज करने की है । हालत यहाँ तक आ पहुँची है कि निकृष्ट जूनों अर्थात पिंजरों यानी के मुर्दा अथवा विष्टा के पात्र कब्रों इत्यादि को रोशन करने के लिये मजबूर हैं । शैतान अपनी मर्जी से कुछ नहीं कर सकता, जीव को करने के लिये उत्तम मनुष्य जन्म दिया जाता है और विचार के लिये बुद्धि । सलाहकार के रूप में शैतान अपना अंश अर्थात "मन" देता है । जो जीव को उसकी निजी ताकत तथा कमाई को खर्च करने की निरन्तर सलाह इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि जीव अपने को भूल कर उस की इस नकली रूपवान तथा आकर्षित सत्ता को स्वीकार करें ! जैसे-2 जीव इन रूपों का उपभोग करता है उसे इन की कीमत चुकानी ही पड़ती है । इसे चुकाने के लिये उसे कोई न कोई कब्र (शरीर) अवश्य रोशन करना पड़ता है । कौन सा शरीर, ये उसकी अपनी निजी मांग अर्थात वासना पर निर्भर करता है । क्रोध-मांस-चतुराई जैसी

अनन्त निजी वासनाओं के लिये उसे ये मनुष्य जैसा कीमती पिंजरा कभी सुपने में भी प्राप्त होना संभव नहीं है । इनके लिये तो बाघ-गिद्ध-भगयाड़ इत्यादि निकृष्ट भोगी जूनें अर्थात शरीर ही प्राप्त होते हैं । जिन में बार-2 जीना तथा मरना और अपनी निजी वासनाओं को पूरा करने का पेशा युगों-युग अपनाना ही पड़ता है । जब तक ये वासनाऐं नहीं मिटती ये दौर चलता ही रहता है । फिर कब मौका मिलेगा ऊपर उठने का अर्थात "उसे" मिलने का इसका लेखा आज तक कोई ऋषि-मुनि नहीं दे सके । "कई जनम भए कीट-पतंगा । कई जनम गज-मीन-कुरंगा । कई जनम पंख-सरप होइओ । कई जनम हैवर-ब्रिख जोइओ । मिल जगदीस मिलन की बरीआ । चिरंकाल इह देह संजरीआ ।" इस कीमती दुर्लभ मानुख जन्म को प्राप्त कर फिर वही गल्ती करता है जिसका जुर्माना वो अनन्त युगों से निकृष्ट शरीर को रोशन करता हुआ देता चला आ रहा है । अर्थात उस "एक की सत्ता" को स्वीकार न करना । अगर करता भी है तो बाहरी दिखावे के तौर पर केवल अन्दर से रूप की नकली मिट जाने वाली सत्ता के लिये जो केवल शैतान के हवाले है । इस कमजोरी का शैतान लाभ उठाता है और निरन्तर उसकी वासना को प्रबल बनाने के लिये वह एक से बढ़ कर बढ़िया आकर्षित रूप प्रत्यक्ष करता रहता है । मृग-तृष्ण की तरह जीव रेगिस्तान में प्यासा दम तोड़ता

बार-2 जमता-मरता अथाह दुखों का बोझा ढोता रहता है । शैतान केवल जीव के कर्म अनुसार फंदा प्रस्तुत करता है । मांग केवल जीव की ही रहती है अर्थात "कर्म" केवल जीव का ही कमाया हुआ है, फल कर्म अनुसार केवल निश्चित है, इस पर जीव का कोई अधिकार नहीं है, ये केवल प्रभू के अधीन है जो पहले से ही निश्चित है । आप विचार कर सकते हैं कि क्रिया कब, किस युग-काल में जीव नें कमाई-प्रभू के सिवा कौन जानता है ? जिस जन्म में फल अर्थात भुगतान यानी के जुर्माना देना है वो आप की चतुराईओं अर्थात जी हजूरी-फरियादों (अरदासों) इत्यादि से कैसे सुपने में भी बदल सकता है ? अर्थात निश्चित समझिये देने ही पड़ेंगे "लेखा मेट न सकिये जो धुर लिखिआ करतार ।" "खेत शरीर जो बीजिये सो अन्त खलोया आई ।" "जैसा बीजे सो लूणे कर्मा संधडा खेत ।" "कर कर करणा लिख लै जाह - आपे बीज आपे ही खाह ।" ये निश्चित नतीजा जीव के प्रमाद का निश्चित इलाज है स्वाभाविक रूप से प्रभू की एक तुच्छ भेंट ! स्वंय भू का मान फिर किस रूह को कैसा प्राप्त होता है ? जो आत्मा केवल अपनी प्राण शक्ति को ईमानदारी से रहत-मर्यादा अनुसार दृढ़ता से नियम में रखने के लिये प्रयत्नशील रहती है, स्वाभिमानी कहलाती है, उसे प्रभू की "विशेष विवेक बुद्धि" प्राप्त होती है। इस "विशेष दया" से जीव अपने कल्याण को विचार कर निश्चित रूप

से "वो" कर लेता है जिस के लिये उसे फिर कभी दुख उठाने के लिये किसी पिंजरे को रोशन करने के लिये मजबूर नहीं होना पड़ता ! अर्थात शैतान के सभी फंदे कोई (?) काट देता है । और रूह अपने मूल (?) में समा कर सदा के लिये मुक्त हो जाती है । इसी को नानक नाम की आत्मा नें लिख कर दिया है "जिह विध-गुर उपदेसिया सो सुन रे भाई । नानक कहत पुकार के गह प्रभ सरणाई ।" और आप जिन गद्दीधारियों के पीछे भाग रहे हो उन्हें परमात्मा स्थापित करने का निकृष्ट कार्य कर रहे हो ये आज तक नानक के गुरू का ब्यान नहीं कर सके । दावा सचखण्ड-नाम-सतगुरू बनने का! एक साधारण सा योगी तीनों कालों को ब्यान करने में समर्थ रहता है अपनी कमाई के बल पर। आत्मा खुद लिख कर के दे गई है मेरा गुरू "सबद गुरू सुरत धुन चेला ।" "सबद" परमात्मा है । दोनों एक ही सत्ता के विभिन्न नामों का केवल प्रदर्शन मात्र है। अर्थात लफज "गुरू या शब्द" केवल परमात्मा लफज की जगह प्रयोग में लाया गया है । गद्दीधारियों का इसमें कोई भी विचार कल्पना में भी नहीं है । ये तो गद्दीधारियों नें इन लफजो के अर्थ अपने ऊपर घटा कर पूरी मनुष्य जाति को अन्धे कुँऐ में डूबने के लिये ढकेल दिया है । ये एक ऐसा अंधा कुँआ इन सतिगुरू (पातशाह) बने बैठे गद्दीधारियों ने मनुष्य जाति के पतन के लिये प्रस्तुत कर दिया है कि जिसमें अन्दर

जाने के तो कई मार्ग हैं लेकिन ताज्जुब है इन की कारीगरी का की "निकलने" का कोई भी पथ आप करोड़ यत्न करने के बाद न प्रत्यक्ष कर पाओगे । अर्थात "आत्मिक मौत" निश्चित समझिये । इसीलिये पुकार-2 कर कह रहे हैं एक परमात्मा की शरण लो और कहीं से कुछ भी होने वाला नहीं है । जो कुछ भी करना है वो केवल आप नें ही करना है । उसने जो करना था आपके कुछ करने से पहले ही कर दिया है अर्थात मनुष्य का "दुर्लभ जन्म" आपको दे दिया है बुद्धि सहित ! अब केवल आप की बारी है ! "अजहू कछ बिगरिओ नहीं जो प्रभ गुन गावै । कह नानक तिह भजन ते निरभै पद पावै ।" इस में एक मिसाल छुपी है । प्यासा कुँऐं पर पहुंच चुका है प्यास बुझ सकती है कब तक ? जब तक रस्सी लोटे से बँधी है । एक बार रस्सी टूट गई, लोटा कुँऐं में गिर गया तो आप सोच सकते हैं कुँऐं तक पहुँचे भी लोटा भी है केवल रस्सी टूटने से आप को प्यासा तड़प-2 कर दम तोड़ना पड़ेगा ! अर्थात जब तक प्राण रूपी रस्सी इस शरीर से जुड़ी है आत्मा अपना वो काम कर सकती है जिसके लिये उसे ये कुँआ प्राप्त हुआ है । एक बार ये प्राण की डोरी टूट गई तो आप सोच सकते हैं ये कुँआ आपके किसी काम न आ सकेगा । जब तक प्राण की डोर बँधी है जीव इसी कुँऐं से अपनी जन्मों-2 की प्यास अवश्य बुझा सकता है कैसे ? "कबीर सूता क्या करे, जागन की कर चैप

। ऐ दम (प्राण) हीरा लाल हैं - गिन-गिन गुर (शब्द अर्थात परमात्मा) को सौंप । कहता हूँ कहे जात हूँ - कहूँ बजावत ढोल । स्वासा बिरथा जात है तीन लोक का मोल ।" इतनी सारी कीमत देने पर भी आप को यकीन मानिये कोई एक प्राण भी फालतू के नहीं लेने देगा ! ऐसी शैतानी ताकत भूत की तरह हर वक्त आप के सिर पर चिपकी बैठी है । उल्टी गिनती गिन रही हैं । शून्य होते ही आप को इस कीमती पिंजरे से अलग कर देंगी । आप केवल हाथ मलते रह जाओगे, इसे निश्चित समझिये ! और तू इस कीमती प्राण को नाचने कूदने में व्यर्थ गंवा रहा है । "कुदम करे पशु पंखिआ-दिसे नाही काल ।" अर्थात ये काम केवल वही विद्वान (मूर्ख श्रेणी का) करता है जिसे अपने सिर पर सवार मौत की आवाज सुनाई नहीं देती । स्पष्ट है केवल "स्वाभिमानी" आत्मा ही इस मार्ग की पथिक बन सकेगी !